AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

नारी शिक्षा का राजनीतिक पक्षः एक समीक्षा

ORIGINAL ARTICLE

Author

सुधा मिश्रा
शोधार्थी

डॉ. उमेश कुमार
शोध निदेशक
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल
विश्वविद्यालय, धनबाद, झारखण्ड, भारत

शोध सार

राजनीति व्यवस्था संचालन की मात्र पद्धति का संग्रहित रूप नहीं है, बल्कि इसके सम्पूर्ण वागमय में जीवन के प्रत्येक क्रिया–कलाप समाहित हो जाते हैं और जीवन का प्रत्येक पक्ष समाज में फलता–फूलता है। समाज को स्त्री और पुरूष मिलकर स्वरूप प्रदान करते हैं। प्रारंभ से आज तक समाज और शिक्षा में आन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। शिक्षा के अनुसार समाज का निर्माण होता है और समाज अपने अनुरूप शिक्षा का विकास करती है। ''ज्ञानम तृतीयम् मनुजस्य नेत्रम'' वैदिक काल से ही शिक्षा को वह प्रकाश माना गया है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करने की सामर्थ्य रखता है इसलिए विद्वानों ने शिक्षा को तीसरा नेत्र कहा है। शिक्षा का तात्पर्य आत्म संस्कार, आत्मोन्नति से है जो की जीवन पर्यन्त चलने वाला तथ्य है ''यावज्जीवमधीते विप्राः'' क्योंकि व्यक्ति ज्ञान एवं आत्मानुभवों से ही सब कुछ सीखता है। समाज के अनेक हित साधको ने समय–समय पर शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला है। शिक्षा सही मायनों में व्यक्ति को परिमार्जित करती है। यह एक निविर्वाद सत्य है कि शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज की प्राण वायु है, उसकी प्रेरणा है, उसकी ऊर्जा है और किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके द्वारा हासिल किए गए शैक्षिक स्तर पर ही निर्भर करता है। शिक्षा और साक्षरता दो अलग चीजें हैं। जहाँ साक्षरता का तात्पर्य अक्षरों को बोलने समझने या लिखने तक ही सीमित है, वहीं शिक्षा का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है। साक्षरता अगर अक्षर ज्ञान से संबंधित है तो शिक्षा विचारों को समझने, उन्हें ग्रहण करने या आत्मसात करने का नाम है। शायद इसीलिए एडमंक वर्क ने लिखा है कि किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी सुरक्षा उसकी शिक्षा है। हमारे देश के लिए यह बात और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि भारत विश्व का सबसे विशाल लोकतंत्र है। बेरोजगारी और कुपोषण जैसी समस्याओं के अलावा हमारी करीब एक तिहाई आबादी निरक्षर है। एक चौथाई लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना गुजर–बसर करते हैं।

मुख्य शब्द

नारी शिक्षा, लैंगिकता, संविधान, समाज, राजनीति.

प्रस्तावना

शिक्षा मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य होने के साथ–साथ वांछनीय लक्ष्यों की पूर्ति का एक उपयोगी साधन भी है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं बुद्धि का विकास कर, उसे आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कार्यों को

सम्पन्न करने के योग्य बनाती है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन है। यहीं कारण है कि मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में शिक्षा को प्रत्येक मनुष्य के मूल अधिकारों में से एक माना गया है।

जब नारी शिक्षा की चर्चा की जाती है तो स्पष्ट देखा जा सकता है कि इस संदर्भ में भी वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना शेष है, परन्तु यह भी सच है कि नारी शिक्षा की आवश्यकता एवं उपयोगिता के प्रति मानव समाजों की समझ क्रमशः बढ़ रही है। विश्वभर में नारियों की स्थिति सुधारने के लिए किये गये आन्दोलनों में उसकी निम्न स्थिति को बदलने के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। 19 वीं शताब्दी के भारतीय समाज सुधारकों का भी ऐसा ही मत था परन्तु प्रारंभिक काल में नारी शिक्षा का उपयोग नारी को एक पत्नी एवं माता के परम्परागत कर्त्तव्यों के और अधिक कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के योग्य बनाना था न कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास प्रक्रिया में उनकी अधिक दक्ष व कुशल भागदारी हेतु उन्हें सक्षम करना था। धीरे–धीरे स्थिति में परिवर्तन आया तथा विशेष रूप से स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के महत्व को उसके विविध एवं विस्तृत आयामों के संदर्भ में देखा जाने लगा और इन्हीं विविध आयामों में शामिल है, शिक्षा के माध्यम से नारियों की समानता एवं सशक्तिकरण के अर्थपूर्ण प्रयासों की संभावना। आज स्पष्ट माना जाने लगा है कि शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला, समाज में अपनी सशक्त, समान एवं उपयोगी भूमिका दर्ज करा सकती है।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकारों ने राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज में बहुविध भूमिका निर्वाह करने के लिए नारियों का आह्वान करने उनकी स्थिति सुधारने हेतु नये–नये आयाम प्रस्तुत किये। संविधान की धारा 45 प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के उद्देश्य से निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति निदेशक सिद्धांत घोषित किया गया और 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 21 'अ' के अन्तर्गत जोड़ा गया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भी एक ऐसे उपकरण के रूप में शिक्षा की भूमिका पर बल दिया जो नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए नारियों को सक्षम बना सकें। आज नारियों के मानवीय अधिकारों तथा समाजो एवं राष्ट्रों के विकास दोनों ही संदर्भ में महिला शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाने लगा है। यही कारण है कि आज भारत में भी नारियों की शिक्षा प्रमुख नीतिनिर्णायक तत्व बन गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में न केवल नारियों के शैक्षिक अवसरों की चर्चा की गयी है बल्कि साथ ही शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का भी मुद्दा उठाया गया है। इसके लिए लैंगिक विषमताओं की समाप्ति का भी मुख्य प्राथमिकता देने की इस शिक्षा नीति में चर्चा है।

नारियों की शिक्षा का राजनीतिक पक्ष नारियों के सर्वांगीण विकास से संबंधित है जिसे दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर आंका जा सकता है।

प्रथम, समानता जिसका सामान्य अर्थ है समान अवसरों की उपलब्धता, विस्तृत अर्थों में कहा जा सकता है कि शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में बिना किसी भेदभाव के अवसरों की समान उपलब्धता ही समानता है।

समानता के संवैधानिक व्यवस्था के बावजुद पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते लैंगिक विषमताओं को पूर्णतः समाप्त किया जाना संभव नहीं हुआ है। लैंगिक असमानता की जड़े मुख्य रूप से सत्ता एवं शक्ति, परम्पराओं, प्रथाओं एवं नियमों पर आधारित रही हैं।

सशक्तिकरण

लैंगिक विषमताओं को प्रोत्साहित करने वाली परमपरागत संस्थाओं एवं संरचनाओं में होने बाला ऐसा परिवर्तन जिससे कि नारियों की समानता सुनिश्चित हो सके, महिला सशक्तिकरण का आधार माना गया है। नारी सशक्तिकरण के कुछ पारिभाषित मानक इस प्रकार माने गये हैं जिसे नारी शिक्षा के राजनीतिक पक्ष में समाहित कर देखा जा सकता है।

- नारियों में आत्मसम्मान एवं विश्वास की भावना विकसित करना।
- नारियों की सकारात्मक छवि का निर्माण, यह कार्य सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में उनके योगदान को मान्यता देकर किया जा सकता है।
- नारियों में समालोचनात्मक चिन्तन की क्षमता का विकास करना।
- निर्णय लेने की क्षमता का पोषण और पुष्ट करना।
- आर्थिक स्वतंत्रता हेतु सूचना, ज्ञान एवं कुशलता उपलब्ध करना।
- नारियों में कानूनी ज्ञान का विकास तथा स्वयं के अधिकारों के संबंधित सूचनाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना।
- सामाजिक–आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से उनकी सहभागिता में वृद्धि हेतु प्रयास करना।

नारी समानता एवं सशक्तिकरण सबंधी उपर्युक्त मानकों की व्यावहारिक प्राप्तियों के संदर्भी में निश्चय ही शिक्षा को एक आधारभूत उपकरण माना जा सकता है, परन्तु इस संदर्भ में कुछ विचारणीय प्रश्न भी हमारे समक्ष उपस्थित होते हैंः

- क्या नारियों की साक्षरता दर एवं शैक्षिक स्तर को उन्नत करके लैंगिक समानता को सुनिश्चित किया जा सकता है?
- क्या यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि नारियों के शैक्षिक स्तर में सुधार से लैंगिक समता का विकास निश्चित रूप से होगा।

यद्यपि लैंगिक समानता विकास एवं नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में शिक्षा की निश्चित तथा महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है परन्तु यह कहना भी आसान नहीं है कि शैक्षिक स्तर में सुधार से ही महिला सशक्तिकरण सुनिश्चित होगा। इस विषय का विश्लेषण करने पर हम पाते है कि लैगिंक असमानता एवं पक्षपात की वर्तमान स्थिति मुख्यतः अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों एवं पितृसतात्मक सामाजिक संरचना का परिणाम माना जा सकता है। अतः केवल शैक्षिक स्तर में वृद्धि के आधार पर इसके समाप्त किये जा सकने का दावा नहीं किया जा सकता तो भी इस आधार पर शिक्षा की उपयोगिता को कम करके नहीं देखा जा सकता। वह शिक्षा का स्वरूप औपचारिक अथवा अनौपचारिक जो भी हो।

नारियों की भूमिका समाज या परिवार में किस तरह की होती है, इस पर विचार व्यक्त करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था जब आप एक पुरुष को शिक्षित करते हैं तो केवल एक पुरुष को शिक्षित करते हैं, परन्तु यदि आप एक नारी को शिक्षित करते हैं तो पुरे परिवार को शिक्षित करते हैं। यह नारी शिक्षा का राजनीतिक पक्ष घोषित करता है। राजनीतिक स्वरूप पूर्णता का प्रतीक है।

यदि हम भारत की प्राचीन संस्कृति एवं समाज का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट होता है कि कुछ काम विशेष में जहाँ एक ओर नारियों की स्थिति सशक्त एवं प्रभावशाली रही, वहीं कुछ कालावधि में उनकी स्थिति में पतन भी हुआ। जब–जब समाज में महिलाओं की उपेक्षा एवं अनादर हुआ है तब–तब समाज का विघटन हुआ है और सामाजिक समरसता में कमी आयी है। पश्चिम के विकसित देशों में भी नारियों की उपेक्षा शताब्दियों तक होती रही है और यही कारण है कि पश्चिम के अनेक विकसित देशों में एक लम्बे काल तक नारियों को उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित रखा गया।

नारियों के सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति पर अनके समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भी गहन अध्ययन किया है। इस संबंध में जेन, फीडमैन का कथन सत्य के अधिक निकट जान, पड़ता है। उन्होंने कहा है कि एक स्त्री, स्त्री के रूप में भले ही पैदा हुई है, किन्तु हमारी सभ्यता और इस सभ्यता के निर्माणकर्ता एक नारी को कमजोर और सशक्त बनाने के लिए काफी हद तक उत्तरदायी हैं। यह तथ्य नारी शिक्षा के राजनीतिक पक्ष को दर्शाता है। नारियां जब तक सशक्त नहीं होगी तब तक तो राष्ट्र का न विकास होगा और न ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा।

नारी को सशक्त और उन्हें राष्ट्र और समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए भारत में लंबे काल से प्रयास

होते रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के काल में महिलाओं को अधोगत अवस्था से ऊँचा उठाने के लिए लगातार प्रयास होते रहे। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज एवं प्रार्थना समाज की निर्णायक भूमिका रही। ईश्वरचंद विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय आदि ने तो नारियों पर हो रहे शोषण, दमन, उत्पीड़न एवं भेदभाव के खिलाफ न केवल शंखनाद किया, अपितु वैसे प्रभावशाली कानूनों का निर्माण भी कराया, ताकि नारियों समाज में अस्पृश्य न समझी जायें। ईश्वरचंद विद्यासागर के प्रयास से ही 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। केशवचंद्र की चेष्टा से ही बहुविवाह को दंडनीय अपराध घोषित किया गया। 1917 में नारियों की भारतीय समिति की स्थापना मद्रास में की गई। 1929 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया। 16 अगस्त 1932 को सांप्रदायिक पंचाट में भारतीय महिलाओं के लिए प्रांतीय विधान सभाओं में तीन प्रतिशत स्थान सुरक्षित किये गये। भारतीय संविधान के 73वें संशोधन 1992 द्वारा ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायतों में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अब तक ढेर सारे प्रयास किये गये हैं जिनमें प्रमुख रूप से महिला राष्ट्रीय आयोग एवं दहेज उन्मूलन अधिनियम 1961 प्रमुख हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा दो में स्पष्ट रूप से यह उल्लेखित है कि कोई भी सार्वभौमिक सरकार महिलाओं के साथ भेदभाव नहीं करेगी तथा उनके सम्मान की रक्षा करेगी। इन सारी बातों के बावजूद यह भी कड़वा सच है कि सरकार एवं शासन द्वारा नारियों की दशा में अपेक्षित सुधार नहीं किया जा सका है। शासकीय स्तर पर ऐसे अधिनियम एवं कानून निर्मित है, जिससे नारियों पर हो रहे शोषण एवं उत्पीड़न को रोका जा सके, किंतु ये सारे प्रयास कहीं न कहीं विफल होते दिख रहे हैं। नारियों का सशक्तिकरण आज के विश्व समाज की एक प्रबल आवश्यकता है, क्योंकि इसके बिना नारियों के संबध में उठाये गये सारे कदम बेइमानी है।

निष्कर्ष

सशक्तिकरण एवं समता के लिए कुछ सुझाव ध्यान में रखने योग्य है–भारतीय नारियों के प्रति अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करना होगा तथा नारी संगठनों के प्रति अपने दायित्वपूर्ण कर्तव्य निर्वहन की अपेक्षा होगी। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यों एवं शिक्षा द्वारा नारियों में जागृति पैदा करने की जरूरत है। कई बार नारियाँ अपने ऊपर हो रहे शोषण एवं उत्पीड़न का प्रतिरोध नहीं करती हैं। इस प्रकार महिला समुदाय से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे मूकदर्शक न बने रहें वरन अपने भीतर एक आत्मविश्वास पैदा कर शोषण एवं उत्पीडन का प्रतिकार करें। नारियों के सशक्तिकरण अभियान में मीडिया एवं संचार माध्यमों को भी कहीं अधिक रूचि लेनी चाहिए।वर्तमान समय में सोशल मिडिया का विशेष प्रभाव देखा जा रहा है। विभिन्न सरकारी संगठनों में नारियों की नियुक्ति का मार्ग विशेष रूप से प्रशस्त किया जाना चाहिए, खासकर पुलिस संगठन में भी उनकी नियुक्ति प्रक्रिया को सरल एवं सहज बनाया जाना चाहिए। नारियों के सशक्तिकरण हेतु शिक्षा की प्रबल आवश्यकता है। आज भी भारतीय समाज पुरुष प्रधान ही है, किंतु महिलाएं भी अपनी तंद्रा तोड़ें तथा शिक्षा ग्रहण पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करें। महिलाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए महिला स्वयंसेवी संगठनों को स्थापना की जानी चाहिए। यह उनके स्वालंबन की दिशा में एक सराहनीय कदम होगा।

संदर्भ सूची

1. सिंह, बैकुण्ठनाथ (1996) *अन्तर्राष्ट्रीय संगठन,* ज्ञानदा प्रकाशन (पी.डी.), नई दिल्ली, संयुक्त राष्ट्र प्रसंविदा अनुच्छेद 26 (1), पृ. 76।
2. माथुर, एस. एस. (1997) *शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 329।
3. त्यागी, गुरूग्रैरन दास (2008) *भारत में शिक्षा का विकास,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 207।
4. सिंह, आशा (2009) आजाद भारत की महिलाएँ, स्वाधीनता दिवस विशेषांक, *दैनिक जागरण,* दैनिक, रॉची संस्करण, दिनांक 15 अगस्त 2009, पृ. 08–09।
5. माथुर, सुमन्त (2006) पंचायती राज्य अवधारणा एक विहंगम दृष्टि, *कुरुक्षेत्र,* ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वर्ष 52 अंकः 10, अगस्त 2006।

––==00==––